बातां री फुलवाड़ियों की भाषा

*डॉ. गोकुल चन्द सैनी

भाषा और शैली का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। भाषा का सुन्दर और सशक्त होना लेखक की योग्यता पर निर्भर करता है। इसके अतिरिक्त साहित्य जितना ही उच्च कोटि का होगा एवं लेखक जितना योग्य होगा, शैली भी उतनी ही उच्च कोटि की होगी। भाषा ऐसी होनी चाहिए जो कि सजीव लगे। जिसमें सफल चित्र खड़ा करने की सामर्थ्य हो और ओज एवं माधुर्य गुणों की अवस्थिति विषयानुकूल और रसानुकूल हो। उसमें व्यंग्य और परिहास के स्थल भी हों। मुहावरों के प्रयोग से भाषा सजीव और सशक्त होती है। "भाषा शैली कहानीकार के मनोभावों की अभिव्यक्ति का एक मात्र साधन है। इसी के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि अमुक कहानी सरल, सुबोध और सरस शैली में है तथा कहानी गूढ़, अस्पष्ट और दुर्बोध शैली में है। 1 "शब्द–शक्ति का ज्ञान, गम्भीरता और संयम, विषयवस्तु कहानी की भाषा शैली की मुख्य विशेषता है। लेखक के ह्रदय के उद्‌गार उसके भाव होते हैं और इन भावों की अभिव्यक्ति का आधार भाषा ही होती है। भावों की अभिव्यक्ति का आधार भाषा है अतएव भावों को सुन्दर रूप में प्रकाशित करने क लिये उसी के उपयुक्त भाषा में सुन्दरता होनी चाहिये। भाव में भाषा के द्वारा ही मार्मिकता का पुट दिया जा सकता है।

कहानी के गद्य में शब्द चयन और वाक्य योजना ही भाषा की वह कलात्मकता है जिसके विविध प्रयोग और रूपों से कहानीकार अपने भाव–चित्रों को मूर्त करता रहता है। कहानी की भाषा ऐसे सार्थक शब्द–समूहों से गठित होनी चाहिये जो एक विशेष क्रम से व्यवस्थित होकर लेखक अथवा पात्र के मन की बात पाठकों के मन तक पहुंचाकर उसके द्वारा उन्हें प्रभावित करती हो। जैसे–"मछुओं को हवा, उमस और बरखा की जबरदस्त पहचान होती है। नदी पार कर नगर में घुसते ही पानी बरसने लगा। मछुवन के मन में बेहद हड़बडी मची। भीगते–भीगते सारी मछलियाँ जैसे–तैसे बेच डालीं। वापस बेतहाशा भागती हुई नदी के किनारे आयी, पर नदी विकट रूप से बह रही थी। देखने मात्र से ही डर लगे, ऐसा उत्कट वेग। पहाड़ की ढलान से पछाड़ खाता पानी नदी के बीच आते ही मचलने लगता था।" 2 शैली लेखक का स्वभाव है और स्वभाव का उद्‌भव क्षेत्र जीवन। यह कलाकार के अस्तित्व और व्यक्तित्व का परिचय देती है। कहानी के अन्य समस्त तत्वों का उपयोग करने की रीति ही शैली है। "शैली लिखने का वह कौशल, सौष्ठव और सौन्दर्य है, जिसमें एक प्रकार के वैशिष्टय की आवश्यकता होती है और वह प्रधान गुणों के कारण पाठकों का ध्यान सहज ही में अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। 3

1. देथा जी की भाषा

राजस्थानी गद्य काफी प्राचीन है, और बात साहित्य चूंकि गद्य का अंग है अतएव यह भी काफी पुराना है। राजरथानी संस्कति में भाषा के सुथरेपन पर बहुत ध्यान दिया गया है। देथा जी ने भी अपने बात साहित्य में इस बात का ध्यान रखा है। इन्होंने गॉव के बड़े–बुजुर्गों से इन कथाओं को जिस रूप में सुना उसी रूप मे लिखा। बातां री फुलवाड़ी (तेरह भाग) और अन्य रचनाओं को अपनी मातृ भाषा राजस्थानी में लिखा। इसलिए उनकी साहित्यिक भाषा राजस्थानी है। राज़स्थानी भाषा में छोगे, औखाणै, प्रवाद, कैवतें (कहावतें) अत्यन्त लोकप्रिय रहे हैं। 'कागपन्थ' कहानी में छोगे का एक उदाहरण दृष्टव्य "स्वारथ सॉई, स्वारथ राम। स्वारथ पूजा, स्वारथ धाम। कैसा दोस्त और

कैसा भाई। कैसी बहन और कैसी भौजाई। कहाँ मुल्क और कहाँ भलाई। थूक उछाले मिले मलाई। कैसी माँ और कैसा बाप। सब है मतलब का सन्ताप। धरम–करम की बातें झूठीं। अपने दाने, अपनी मूठी। खटदरशन का खोय ज्ञान। थोथी माला, थोथा ध्यान। झूठी प्रीत और रूखा नेह। किसका घर और किसका गेह। भजन–साखी, हेली–हरजस तीर हलाहल, टेढ़े तरकस। सूने मार्ग और सूने पंथ। उजले वेश और काले सन्त।" 4 इसके अलावा भी "दूजौ कबीर', 'बेदाग चिकनाहट', 'न्यारी–न्यारी मर्यादा', 'जंजाल', 'उजाले के मुसाहिब', दिवाले की बपौती', "खीरवाला राज्य', 'आसीस' और 'अदल बदल' आदि बातों में देथा जी ने इन लोक तत्वों का प्रयोग बड़े ही सुसंगत ढंग से किया है। उनकी कहानियों में प्रयुक्त ठेठ राजस्थानी शब्दों से राजस्थानी शब्दकोशों के निर्माण में सहयोग मिला है। इनके लेखन की विशिष्ट शैली और लोक मुहावरों के प्रयुक्त कए जाने से राजस्थान गद्य में एक सबल भाषा का निर्माण हुआ है। देथा जी की लालित्यपूर्ण राजस्थानी भाषा का एक उदाहरण प्रस्तुत है– दो तीन दिहाडे ते नेठाव राख्यौ। जाण्यौं, कदास डाली निवैला। पण सांपा रै किसी साख। दुखै जिगरै दूखाणों अर पाकै जिणरै पीड़। अै बाबू लोग गदैई किणी रा व्हीया? बाढ़ी आंगकी माथे ई को मूतैनीं। जिलोरू किण सूं साख पाले । अै तो नेम धार लियो कै सूंक टाल सगे बाप रौ ई काम को करणो नी। आंरा सू फेर कांइ बण आवै। ऊंदरी रा जाया तो दरड़ा ई खैदेला। कागलो तो वींट ई करैला। औ बाबू तो सुनार लखणा आपरी मां रा ई हांचल बाढ़ लेवै। म्हारी अकल तकात कहयो को करयों नीं। जमीं सूता आकास चाटै। मन में महाराजा बण्योड़ा। पाघरो ऊपरलो जोर जतावै। काके री पीयोड़ी, भतीजां नै उगै। मिनख ने मिनखई को माने नीं। फगत आप री मारयोडी हलाल गिणै। पण संसार में बडाबडी रो खैल है। किणी ताण अफसर रो टेलीफून आयो। फटाफट काम व्हैगो अकरादेव नै सै कोई निर्व। म्है चर, पांच दिनां में भीली भांत पतवांणली के लाठी जिणरी भैंस। लांठां री सकरांमत है। पईसां री खीर है। लांठां रो डोको डांग फाडे। गरीबां री कठै ई दाद फरियाद कोनी। दूबलो जेठ देवरां बिरोबर। 5 देथा का गद्य ओखाणों और कहावतों से सजा हुआ है। वे भाषा भी पात्रानुकूल काम में लेते है।

इनकी बातों में प्रयुक्त भाषा का सबसे बड़ा गुण उसकी सहजता और सजीवता है। वर्णनात्मक स्थलों पर इतनी सशक्त भाषा का प्रयोग हुआ है कि सहज में ही चित्र उपस्थित हो जाता है। कहानी कहने का इनका अपना एक अनूठा ढंग है। कथन की इस अपनी प्रणाली है जो सर्वथा नवीन है और जिसमें छोटे छोटे वाक्यों का प्रयोग एवं अनेक स्थलों पर तो काव्यत्मकता – कविता जैसी तुकबन्दी आ गयी है, जैसे– सत्ता के मद की अपनी प्यास, सत्ता के मय की अपनी रास। सब रंगों की काली छाया। राव रंक की अपनी माया। यह बरसों जूनी बात। जैसे तारों छायी रात। कि किसी वक्त के कगार पर बादशाह का एक खास मरजीदान काजी रहता था.....। 6 " और फिर कहानी में भाषा जो तुकों के कारण उछाल–उछाल कर चलायी गयी थी, कलकलाती हुई बह निकलती है – वेगवती धारा में बदल जाती है, जिस में एक–से–एक सुन्दर बिम्ब प्रतीक भंवर खाते मिलते हैं। एक–से–एक सुन्दर कहावतें और लोकोक्तियां तैरती हुई दिखती हैं। जैसे– "हवा के किनारे और अँधियारे की छत्र–छाया के तले एक गाँव बसा हुआ था। जहां एक हतभागे बामन का डेरा। टूटी झोंपड़ी। टूटा ही आँगन। बामनी तो एक धीया का जन्म देकर प्रसव पीड़ा सहते–सहते अपनी वैतरणी पार कर गयी। पर उम्र के अनुसार बामन के दिन और दिनमान ज्यों–ज्यों सिकुड़ते गये, त्यों–त्यों धीवड़ी का जोबन उभरता गया। अखिर जीवित काया से बुरी तरह परेशान होकर वह बामन पड़ोसी बनिये की पेढ़ी पर आया। न मालूम उसने क्या सोचकर मसान से

जीवन की आस लगाई। उनकी कथा में निरन्तर कुछ घटित होता रहता है और वह क्यों घट रहा है, इसकी तफसील वह खुद नहीं देते। पाठकों की विचारशक्ति पर छोड़ देते हैं। जबकि तथाकथित आधुनिक कथाकार मनस्थिति पर छोड़ देते हैं और दावा करते हैं कि वह मनोवैज्ञानिक गुत्थी सुलझा रहे हैं। विजयदांन देथा यह भ्रम नहीं पालते। इनकी बातों में पात्रों के अनुरूप ही भाषा का प्रयोग देखने को मिलता है। इस दुष्टि से "दूजौ कबीर' कहानी में कबीर का कथन दृष्टव्य है– "कबीर सिर हिलाते बोला, दान करने के गुमान से मेरा मन तुष्ट नहीं होगा।

धन जुड़ने से धन तो बढ़ता है, पर बाकी सब गुण घटते हैं। इन्सान मैं इन्सानियत न रहने पर पिछे फकत मल–मूत, खून, हड्डियॉ और खाल बचती है। तलवार की ताकत के बिना न दौलत बढ़ती है न सत्ता। तलवार और सिंहासन के आतंक से मौत डरती हो तो बात दूसरी है।"8 इनमें ऐसा नहीं देखने में आया है कि राजस्थान प्रान्त के अलावा जितने भी अन्य प्रान्तों के चरित्र आये हैं उनके लिये भी राजस्थानी भाषा का प्रयोग हुआ हो। यहां तक कि इनकी कुछ बातों में तो मुसलमान पात्रों के मुंह से उर्दू अथवा फारसी भाषा के शब्दों को प्रयोग में लाया गया है। जैसे– "नाभि तक लम्बी खिचड़ी दाढ़ी हिलाते काजी बोला, नहीं–नहीं। ऐसे नाम मत बताओ। हम इन्सान तो मजहब के मुताबिक नाम रखते हैं; पर जानवरों को मजहब और जात–पांत के दायरे में न बांधें तो बेहतर।"9 देथा जी की भाषा में शब्दाडम्बर नहीं है। अनमेल, बेजोड़ या भोंड़े शब्दों की योजना इनके बात साहित्य में नहीं मिलती।

देथा जी की बातों में राजस्थानी जनपदों के विशिष्ट प्रयोगों को भी देखा जा सकता है। इन बातों में राजस्थानी के विशेषतौर से मारवाड अंचल के सामाजिक, सांस्कृतिक तथा प्राकृतिक वातावरण का जितना सुन्दर चित्रण किया गया है, उतना ही सुन्दर यहां की लोक परम्पराओं का भी किया गया है। वैसे भी बातें जिस अंचल और प्रदेश से सम्बन्धित होती हैं, उसमें वहां की लोक–संस्कृति, रहन–सहन, रीति–रिवाज, खान–पान, पशु–पक्षी, ऋतु–वनस्पति आदि का स्वभाविक चित्रण होता है। इस बात को देथा जी ने भी स्वीकार किया है कि बातां री फलवाड़ी जो राजस्थान की जमीन पर प्रस्फुटित हुई है, उस में यहां की रेतीली सुवास, यहां के गाछ–बिरछों की हरियाली, लू का उत्तप्त श्वास–प्रवास, हवा की शीतल व उष्ण बयार, यहां का आकाश व उसके उल्लास–युक्त सितारे अपनी टिमटिमाहट के साथ अंकित हुए हैं– यहीं के बाशिन्दों की अपनी ओजस्विनी वाणी राजस्थानी में जिसकी बहुरंगी छटठा का अपना ही साज–सिंगार है। "10

देथा जी मूलतः जोधपुर जिले के बौरून्दा गाँव के रहने वाले हैं। इन्होंने अपने गाँव बोरून्दा, आस–पास की ढ़ाणियों व पडौसी गाँवों के बुर्जुग लोगों के संग बैठकर जो बातें सुनी उन्हीं को लिखा। देथा जी की इन बातों में मारवाड़ के अन्तर्गत आने वाले कुछ कस्बों व क्षेत्रों का थोड़ा बहुत उल्लेख मिलता है, जिनमें जोधपुर, बोरून्दा, मेड़ता, जैतारण, पिपाड़ व नौ कूँटी माराड प्रमुख है।

इन्होंने इन बातों को कहावतों का बाना देकर इस प्रकार प्रस्तुत किया है, जैसे– एक दफा थार के रेगिस्तान में लगातार तीन साल तक ऐसा विकट काल पड़ा कि अमीरों को जब दांत कुचरने के लिए तिनके भी दुर्लभ हो गये तो बेचारे जानवरों की बिसात ही क्या। इसके अलावा भी इन्होंने इन बातों का प्रारम्भ ऐसे किया है, जैसे – जंगल की ओट में एक गाँव बसा हुआ था (मरीचिका), किसी एक गाँव में धनाढ्य सेठ की हवेली थी (भूल–चूक लेन–देन), किसी समय की गोद में एक सुखी व संतोषी गाँव बसा हुआ था (समय–समय की हवा), नौ कूँटी मारवाड का किसान (आशा अमरधन), एक था ठाकुर (पुरखों की पुण्याई), एक था किसान (घड़े की सीख), एक राज्य था (सपनप्रिया), एक था राजा (खीरवाला राज्य), एक था सेठ (आसमान जोगी), एक था घर–गृहस्थ राजपूत (मायाजाल), बरसों पुरानी बात है कि. एक था पहुँचा हुआ संत (अदल–बदल), एक था बनिया (मोह भंग), किसी बस्ती में सात बनिये बसते थे (खोजी), एक था कठियारा (सपना) व एक थी भोली–भोली कमेड़ी (कागमुनी) आदि। इनकी बातों की कथावस्तु जितनी स्वाभाविक है, वही भाषा भी अकृत्रिम है। जहां इनकी बातों की भाषा में प्रसाद, ओज एवं माधुर्य तीनों गुण देखे जा सकते हैं वहीं इसके साथ–साथ भाषा में लाक्षणिकता का प्रयोग भी देखने को मिलता है।

बातों में सरलता के गुण को ही बातों का प्रसाद गुण कहेंगे।

भाषा का यह गुण देथा जी का प्रायः समस्त बातों में देखा जा सकता है। एक दाहरण इस प्रकार है– "एक खेत में

सियार–सियारनी का जोड़ा बसता था। लिपि हुई साफ–सुथरी खोह। चारेक खेत की दूरी पर निर्मल पानी का पोखर। जंगल में बेर के अनगिनत झाड़–झंखाड़। चुन–चुनकर मीठे बेर खाते। सुख और आनन्द की कोई सीमा नहीं। परस्पर बेहद प्रेम एक दूसरे की छाया पर जान देते। सियारनी सीता से भी सवाई सतवन्ती। मच्छर मक्खी तक को शरीर का परस नहीं करने देती। नखरे व नजाकत के मारे सियार को चौन नहीं लेने देती। 11

देथा जी की भाषा में प्रसाद गुण के साथ–साथ माधुर्य गुण भी जगह–जगह पर देखने को मिलता है। इनके "दुविधा कहानी संग्रह में केंचुली कहानी के अन्तर्गत लाछी गूजरी के सौन्दर्य वर्णन में माधुर्य गुण देखने को मिलता है। उदाहरण इस प्रकार है – "दूध–दही और मक्खन के सौच में ढ़ली पुष्ट देह। झांगों चढ़ा यौवन। अंग–अंग से मानो मजीठ चू रही हो। जिसने भी चेहरा देखा, एक बार तो स्तब्ध रह गया कि साढ़े तीन हाथ की देह में ऐसा समाया तो समाया ही कैसे।

मानो तमाम कुदरत की बेजोड सुन्दरता ने लाछी गुजरी की देह ने सरण ली हो जैसा बेजोड रूप, वैसा ही नाम लाछी। नाम लेते ही मुंह भर जाता। ह्रदय में प्रतिध्वनि गूंजती। अमृत घुल जाता। 12

***व्याख्याता– हिन्दी**
स्वामी विवेकानन्द राजकीय महाविद्यालय,
खेतड़ी

सन्दर्भ

1. हिन्दी कहानियों की शिल्प विधी का विकास : डॉ. लक्ष्मीनारायणलाल, पृष्ठ–340
2. दुविधा : विजयदांन देथा, अपनी–अपनी खुशबू पृष्ठ–३,
3. कहानी और कहानीकार : डॉ. मोहनलाल जिज्ञासु, पृष्ठ–3
4. दुविधा : विजयदांन देथा, कागपन्थ, पृष्ठ–205
5. अलेखू हिटलर (बातपोस) : विजयदांन देथा, पृष्ठ–185
6. दुविधा : विजयदांन देथा, दबदबा कहानी पृष्ठ–9
7 सपनप्रिया : विजयदांन देथा, कहानी गिरवी जोबन, पृष्ठ–155
8. दुविधा : विजयदांन देथा, कहानी दूजौ कबीर , पृष्ठ–45
9. दुविधा : विजयदांन देथा, कहानी दबदबा, पृष्ठ–10
10. चौधराइन की चतुराई : विजयदांन देथा मुखड़ा, पृष्ठ–15
11. दुविधा : विजयदांन देथा, कहानी सावचेती , पृष्ठ–51
12. दुविधा : विजयदांन देथा, कहानी केंचुली, पृष्ठ–55